UNIVERSAL LIBRARY
OU_182945
UNIVERSAL LIBRARY

H80 H3642
T53J P. G.
त्रिपाठी, कांति.
जीवनदीप. 1958.

OUP—68—11-1-68—2,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H80 T53J Accession No. H3642

Author त्रिपाठी, कांति.

Title जीवन-दीप. 1958.

This book should be returned on or before the date last marked below.

OUP—68—11

जीवन-दीप

कुमारी कांति त्रिपाठी एम० ए०
गोकुलदास गर्ल्स कॉलेज
मुरादाबाद

प्राप्ति स्थान

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रकाशक
कुमारी कांति त्रिपाठी एम० ए०
उदयाचल
कमला नेहरू मार्ग
मुरादाबाद

प्रथम संस्करण
१९५८

एक रुपया पचास नये पैसे

Checked 1966

मुद्रक
हिन्दी साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

दो शब्द

जीवन-दीप अनन्त प्रतीक्षा का प्रदीप है : इसके प्रकाश में असीम करुणा ममता के स्नेह का तारल्य है। मानव-हृदय का जीवंत दीपक, जिसमें अग्नि है, ज्योति है, ऊर्ध्व आरोहण है, निष्कंप ध्यान की अंतःस्थिति, भय का कंपन तथा दुःख और नैराश्य का कल्मष है।

अपनी छोटी-सी मिट्टी की देहली लाँघ कर इसका प्रकाश बाहर निःसीम जिज्ञासा के आकाश में फैल गया है। वह समस्त संसार को अपने ही प्रकाश में देखना चाहता है। साहसी पथिक, जीवन की झंझा के अनेक झोंके झेलता हुआ, अनेक राहों में भटकता, टेढ़े-मेढ़े गलियारों को प्रकाशित करता हुआ, वह अपने संयम और आत्म-विश्वास से नहीं डिगा है : अपने ही में स्थित है।

इस दीप की विशेषता इसकी अनुरागभरी, आशाभरी अश्रु-विगलित करुण दृष्टि है, जो सर्वत्र व्याप्त होकर अपनी सांत्वना के लिये कुछ न कुछ खोज निकालती है। सूनेपन की रिक्तता को भी अपने हृदय की समवेदना से भर कर उसमें से किसी न किसी प्रकार की पूर्णता प्राप्त कर लेती है।

कुमारी कांति त्रिपाठी के इस भाव-लय में पिरोए हुए छंदगंधी, करुणा-द्रवित गद्य का मैं स्वागत करता हूँ। वह निःसंग मानव-आत्मा को अनुरक्त हृदय की नम्र भावांजलि है। निःसंदेह, मानव-हृदय की आकांक्षा अमित, दुःख सहने की शक्ति अजेय और आशा का प्रकाश अमर एवं नित्य-नवीन है। फिर भी जीवन के सूर्य से अधिक उपयुक्त शब्द उसके लिये जीवन-दीप ही है।

—श्री सुमित्रानंदन पंत

गद्य-गीत

उपहार	१
तुच्छ भेंट	२
मिलन के अंतिम क्षण	३
भार	४
निर्विवाद सत्य	५
अटकी आशा	६
पता नहीं	७
असमर्थता	८
अभिलाषा	९
अशांत खोज	१०
अंतर्निहित	११
खंडित उपासना	१२
रहस्य	१३
अनन्य साथी	१४
अनजान भूल	१५
नाविक के प्रति	१६
याद रखना	१७
सूनापन	१८
मृत्यु	१९
प्रभाव	२०
विषमता	२१
निराकार	२२
सहारा	२३

निरालंब	२४
बोध	२५
निर्देश	२६
परामर्श	२७
पछतावा	२८
व्यर्थ	२९
आग्रह	३०
निश्चय	३१
मनुहार	३२
जलन	३३
अन्याय	३४
परिवर्तन	३५
अनुमान	३६
आशंका	३७
निरपेक्ष	३८
दृष्टिकोण	३९
द्वैत	४०
प्रत्यावर्त्तन	४१
भय	४२
आवश्यक	४३
तुम्हारा मिलन	४४
अंधकार	४५
चिंता	४६
उपेक्षा	४७
कसौटी	४८
मर्म	४९
पथिक से	५०

प्रतीक्षा : एक समझौता	५१
रहस्यमय	५२
प्रकृति और मैं	५३
अधूरा चित्र	५४
स्वप्न-भंग	५५
आँसू	५६
अस्थिर	५७
आदि और अवसान	५८
आवरण	५९
पता नहीं	६०
क्यों रोते हो ?	६१
मैं	६२
साधन और साधक	६३
प्रतीक्षा	६४
अधूरा	६५
आगमन	६६
पुष्प	६७
मैं और तुम	६८
क्यों ?	६९
निधि	७०
समय	७१
सम्बन्ध	७२
न्यास	७३
आदेश	७४
परदेशी	७५
छिपा रहस्य	७६
तुम	७७

स्पष्ट बात	७८
पश्चाताप	७९
आलोक और निराशा	८०
पथ और आह्वान	८१
अप्राप्य की प्राप्ति	८२
बाहर-भीतर	८३
व्यवधान का पूरक	८४
अभिलाषा	८५
हृदय की मंजूषा	८६
फूल	८७
प्रकृति और साथी	८८
आत्म-निवेदन का पल	८९
उर-वीणा	९०
निर्लिप्त नाविक	९१
वंचित का सुख	९२
जीवन और संसार	९३
पथ और गति	९४
मैं जानती हूँ	९५
लघु दीप	९६

उपहार

उषा अपनी अरुणाभा को पृथ्वीतल पर बिखेर देती है और सौन्दर्योपासकों के हृदय में हल्की हल्की गुदगुदी उत्पन्न करती है।

बदली भूखंड को जीवन का मुक्त दान देती है और ग्रीष्म से सन्तप्त सृष्टि को उर्वर बनाती है।

सुरभि अपने को पवन में मिटाकर प्राण-पोषक गंध विकीर्ण करती है।

मेरा संकीर्ण हृदय अतुल अनुराग-राशि को अपने में सीमित नहीं रख सकता। वह इधर उधर बिखर जाता है। इस अनुराग का उपहार क्या तुम स्वीकार न कर सकोगे?

तुच्छ भेंट

भक्त मन्दिरों में तुम्हारी उपासना करने जाते हैं। तुम्हारे शरीर को शीतलता प्रदान करने के हेतु अगर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों, चढ़ाने के लिए पुष्पों की गुंथी हुई माला, आरती करने के लिए कर्पूर तेल बत्ती आदि का उपकरण जुटाते हैं, प्रार्थना से तुम्हारा हृदय पिघलाना चाहते हैं। अन्त में अंतर की अभिलाषा पूर्ति के लिए वरदान याचना करते हैं।

परन्तु मेरे पास तो ऐसा कुछ भी नहीं। फिर मैं तुम्हारी उपासना कैसे करूँ ? तुमको शीतलता प्रदान करने के लिए मेरे पास केवल उंगलियों का कोमल स्पर्श और चढ़ाने के लिए आँसुओं की भग्न माला है। आरती के लिए हृदय का दीपक बनाकर उसमे स्नेह का तेल डालकर उसको जलाना चाहती हूँ। तुम्हारी प्रार्थना करने को वाणी मे मधुरता नहीं, छन्दबद्ध सरस कविता नहीं। है केवल अस्पष्ट, टूटी-फूटी बिखरी कल्पना। मुझको इन सबके बदले किसी वरदान की इच्छा नहीं। मैं तो केवल तुम्हारे हृदय की असीम करुणा की अभिलाषिणी हूँ। मेरे उपास्य ! स्वीकार करोगे मेरी यह तुच्छ भेंट।

मिलन के अन्तिम क्षण

पता नहीं कितने वसन्त, आशा से भरे कितने प्रभात, कितनी अवसादपूर्ण सन्ध्याएँ और कितनी ही अलसाई रातें, तुम्हारे मिलन की आशा में बिताई हैं।

जब तुम आये नेत्र अज्ञान के आवरण के कारण तुम्हारे अस्त-व्यस्त स्वरूप को पहचान न सके। अतीत की अस्पष्ट स्मृति-रेखाओं ने नेत्रों की ज्योति को धुंधला बना दिया था।

परन्तु जब ज्ञान ज्योति जगने पर तुमको पहचानने का समय आया, उस समय मैंने लाज का अवगुंठन पहन लिया। मैं कुछ कहने के लिए आतुर हो उठी, पर कुछ कह न सकी। ओंठ कुछ बोलने के लिए खुले और खुले ही रह गये। यही मेरे मिलन का अंतिम क्षण था।

यों आशा की किरण हृदय में अब भी उद्भासित है। मुझे विश्वास हो चला है कि तुम्हारा मिलन उस समय होगा जब मेरा इस संसार से जाने का बुलावा आ जायेगा।

भार

उषा अनुराग को अपने अंतर में समेटे रहती है; परन्तु उसका हृदय अनुराग से इतना भर गया है कि वह संभाले नहीं संभलता। इसी से सर्वत्र सरस लालिमा छिटक गई है।

बादल जल के भार को सहते रहते हैं; परन्तु जब उस जल भार को सहन नहीं कर सकते, तभी जल की वर्षा कर देते हैं।

सूर्य अपनी किरणों को अपने में ढककर नहीं रख सकता। इसी से अपनी आभा को विकीर्ण करता फिरता है।

अंतर का अनुराग हृदय में समाता नहीं है। इसी से तो उस रस को तुम्हारे हृदय के प्याले में उड़ेल कर वह हल्का होना चाहता है।

निर्विवाद सत्य

नीले आकाश के परिधान में टके हुए झिलमिलाते नक्षत्रों को रजनी के खिसकन पर प्रभात की उषा में विलीन हो जाना है, परन्तु मलिन सन्ध्या के अंचल में उनका पुनर्जन्म होगा। यह बात सत्य है निर्विवाद सत्य।

सुमन समझता है उसकी मादक गंध शून्य में व्यर्थ बिखर कर विलीन हो गई है, पर वह कोकिल की हूक भरी कूक में छिपी हुई है, इसे जिसकी आँखें पहचान पाती हैं, पहचानती हैं।

मैं जानती हूँ मेरे आँसुओं का आशय समझने में आज तुम असमर्थ हो; पर एक दिन आवेगा जब मेरे गीतों में छिपी तुम अपनी निष्ठुरता को स्पष्टता से पहचान पाओगे, इस बात का विश्वास मुझे धीरे-धीरे हो चला है।

अटकी आशा

इस पूर्ण विश्व में मैं ही एक अपूर्ण होकर आई। सुख दुःख भलाई बुराई आशा निराशा, पाप और पुण्य इन सब गुण दोषों की अमिट छाप मेरे अंतर में स्पष्टता से अंकित मिलेगी। मेरा अस्तित्व संसार के लिए वरदान बनकर आया और अभिशाप बनकर छिप गया; परन्तु इस छिपे हुए अभिशाप में भी एक आशा अटकी हुई है।

पता नहीं

मेरा मन कभी कुछ सोचता है, पर पता नहीं क्या ? कभी कभी किसी की प्रतीक्षा करता है, पर पता नहीं किसकी ? कभी कभी अतृप्त नेत्र किसी को निरन्तर खोजते रहते हैं, पर पता नहीं किसको ? कभी कभी दृष्टि कल्पना के सुदूर क्षितिज में विहार करने लगती है, पर निरुद्देश्य ही। जब होश आता है तब अपने ऊपर झुँझलाहट आती है। पर इतना नहीं जानती क्यों ?

असमर्थता

मेरी उनींदीं पलकें, स्वप्नों का संसार लिये, कल्पना के पर लगाकर उस अपरिमित क्षितिज में जा पहुँचती हैं जहाँ पहुँचकर सभी विफल हो लौट आते हैं। उस सुन्दर को नयन खोजते हैं, अन्त में निराश होकर वापिस लौट आते हैं। मधुर कल्पनाओं की केवल सघन विस्मृति सजग होकर अलसाई पलकों में भर जाती है और प्रणय-विहग सुख-दुख के पर समेट हृदय-नीड़ में खिन्न होकर सो जाता है।

अभिलाषा

पुष्प अपने मकरन्द को मेदिनी के स्नेहांचल पर बिखेर कर अपनी ममता का उपहार देते हैं, परन्तु प्रतिदान की इच्छा नहीं रखते।

वर्षा की बूंदें, हृदय में आँसुओं की झड़ी का भ्रम करा कर शीतलता देती हैं। इस उपकार के बदले क्या वे कुछ चाहती हैं?

क्यों न हृदय भी दूसरों के अमिट दुःख में अपने को मिटाकर विश्व-व्यापिनी पीड़ा में अपनी पीड़ा को पहचाने। इसी से तो अपूर्व शान्ति प्राप्त होगी। इसके बदले मैं यह नहीं चाहती कि मेरे प्रति भी को ई अपनी ममता प्रकट करे। नहीं। प्रतिदान के बिना भी मेरे पल कट सकते हैं।

अज्ञात खोज

विविध फूलों की पंखुरियाँ अपने सहस्त्रों दृगों से वाटिका के सूनेपन में एकटक किसी को खोज रही हैं। पर पता नहीं किसको ?

शून्य अन्तरिक्ष में टिमटिमाते हुए असंख्य तारक दल रात्रि के सुदूर अन्धकार में, विस्फारित नयनों से किसी को खोज रहे हैं। पर किस खोई वस्तु को पाना चाहते हैं कुछ पता नहीं।

स्वच्छन्दता से बहता हुआ पहाड़ी झरना अपने फेनिल जल को बिखेर देता है, उस बिखरे हुए अगाध जल स्रोत में धोने के लिए वह किसी के चरणों को ढूंढता है।

इस पिंजड़े में बन्दिनी आत्मा किसी को पाने के लिए छटपटाती रहती है, पर हृदय की चहरदीवारी में फड़फड़ाकर वहीं सो जाती है।

अन्तर्निहित

रात्रि मे निस्तब्धता, चन्द्रिका में स्निग्धता और पवन में शीतलता रहती है। सुमन में मकरन्द, मकरन्द में गन्ध और गन्ध में आकर्षण निहित है।

सुख में दुख की धुंधली छाया, आशा में निराशा, प्रकाश में अन्धकार और हास्य में रुदन की म्लान रेखा समाई हुई है। निर्झर के गान में रुदन और समुद्र की उर्मियों में हलचल छिपी रहती है।

ठीक इसी प्रकार मेरे हृदय की धड़कन और सपनों में भी कुछ छिपा है।

खंडित उपासना

तुम्हारी उपासना के लिए हाथ में भरी हुई पूजा की थाली लेकर जब मैं चली तो पीछे से किसी ने धक्का दिया। थाली हाथ पे गिर पड़ी, रोली सारे में फैल गई, अक्षत बिखर गये। ये फटे से नेत्र आकाश की ओर अपलक ताकते ही रह गये। हाथ अवलम्ब के लिए उठे.....पर वहाँ कौन था जो सहारा देता।

रहस्य

पता नहीं आज क्यों शुष्क-नयन सजल हो उठे है। भीतर से बड़े-बड़े मोती पिघलकर पलकों से निकल कर कपोलों पर ढुलक कर, अंचल को भिगो धरणी को तर करके सूख जाते हैं।

समुद्र की विपुल लहरें ठहर-ठहर कर मेरे अंतर की धड़कन को पल भर सुन शान्त मुख पर छिपी हुई गहरी मर्म-व्यथा को क्षणभर लख फिर उन्हीं में हिलमिल जाती है। उन्हें मेरी वेदना को जानने का अवकाश कहाँ ? हाँ, उसे जान भी कैसे सकती हैं ? जब मैं ही अपने अंतर को न पहचान सकी; तब वे परदेशिनी मुझे क्या जान पायेंगी !

अनन्य साथी

स्वच्छ शिला पर गम्भीर शान्त विचारमग्ना यूति के हृदय की हलचल को कौन समझ पाया है ?

उसके हृदय का करुण विहाग सुनने के लिए असीम साहस और अपूर्व धैर्य की आवश्यकता है। पर ऐसा कौन है जो अपने हृदय की सारी ममता बिखेर कर उसके आँसू पोंछे ?

हाँ, जलधि की हलचल ही म्लान ओठों की शुष्क हँसी, मस्तिष्क के स्पन्दन, वाणी के कम्पन और हृदय के क्रन्दन को, ठीक से पहचान सकती है और या पहचान सकता है शून्य अन्तरिक्ष के गम्भीर प्रांगण से टूटे नक्षत्रों का अवसान, फैली हुई रेती का प्यासा किनारा या कराहता निःश्वास लेता पवन।

अनजान भूल

दूर से आती हुई अगाध जल की तीव्र लहरें एक आर्तनाद करती हुई आती हैं और बहती हुई फिर दूर चली जाती हैं; पर निकटस्थ शान्त, सजल नयना मूर्ति के मग्न हृदय में अनजाने ही करुण क्रन्दन भर जाती हैं, यह उन्हें क्या मालूम ?

सघन रसाल कुंजों में मस्ती से डोलती हुई कोकिल की मधुर तानें व्यथित प्राणियों के अंतर में विरह का आलाप उठाकर शांत हो जाती हैं, पर जिस उथल पुथल को जन्म दे **जाती** है उसका उन्हें क्या आभास ?

प्रातःकालीन थिरकती हुई वायु के मन्द झोंकों से हिलते हुए रंग-विरंगे सुमन हृदय को हिलाकर सुप्त-व्यथा को जगा जाते हैं, यह वे क्या जानें। क्यों जानें ?

तब...तुम्हारी समीपता मुझे कितनी मंहगी पड़ी है, यह तुम... मुझसे मत पूछो।

नाविक के प्रति

हे नाविक, यह पथ इतना सुगम नहीं जितना तुमने समझ रखा है। जीवन-सरिता विषम भागों से बहती है। स्थान-स्थान पर संकीर्ण संधि-स्थल हैं, असंख्य अथाह आवर्त्त हैं, अगणित जल जन्तु हैं नाविक।

हे जीवन नाविक, तुमको अपनी जीवन नैया को घोर आँधी के थपेड़ों से बचाकर अपरिमित घात प्रतिघातों के भीतर से ले जाना होगा। चट्टान की भाँति अविचल और वज्र की भाँति कठोर बनकर इस मार्ग को पार करना होगा। तनिक भी असावधानी दिखाने से तुम पथ भ्रष्ट होकर लक्ष्य भ्रष्ट हो जाओगे। तब तुम्हारी नैया तिनके की भाँति डगमगाकर कहीं कूल किनारा न पा सकेगी। ऐसी विषम स्थिति मे पड़कर तुमको कोई संकेत, कोई स्तम्भ न मिलेगा। उस समय तुम किसी को दोषी न ठहरा सकोगे मेरे नाविक।

नियति संसार में नया चित्र खड़ा करने के लिये तुमसे खेलवाड़ करेगी। तुम कहीं घबराकर रो न देना। सहिष्णुता ही तुम्हारे जीवन की एक मात्र साथिन होगी। जीवन के चरम उद्देश्य पर पहुँचने के पूर्व तुमको अपने तरुण हृदय के सम्पूर्ण साहस को बटोरकर चलना होगा, प्रिय नाविक!

याद रखना

याद रखना पथरीले पथ के झाड़ झंकारों से तुम्हारा सुकोमल, सुकुमार शरीर छिल जायगा, परन्तु आह करोगे तो कोई सुनने वाला न होगा। तुमको सब कुछ सहना होगा, नहीं तो जग-हँसाई होगी। समझे न ?

जटिल पथ की उलझनों को स्वयं ही सुलझाना होगा, परन्तु उनमें कहीं स्वयं न उलझ जाना। कहीं-कहीं हल्की क्षणिक छाया भी मिलेगी, परन्तु उस छाया को छाया न समझ, उसकी उपेक्षा कर विश्राम की गहन खोज में निकल पड़ना।

जब उस अथाह नदी को पार कर लोगे, तभी सुख की अनन्त राशि बटोर सकोगे। कहीं उस अतुल सुख की चिकनाहट में फिसल न जाना। यदि फिसल गये तब यहाँ से तुमको कोई न निकाल सकेगा। भोले नाविक, इतना तो कम से कम याद ही रखना।

सूनापन

अन्तरिक्ष शून्य है, परन्तु उसकी शून्यता को नक्षत्रों की झिल-मिलाहट टिमटिमाहट दूर करती है। वह अपने एकाकीपन को बटाने के लिए नक्षत्रों को चिर साथी बनाता है—ऐसा साथी जो कभी न बिछुड़े, मृत्यु के कठोर आघात से भी न बिछुड़े।

हृदय के अन्तर्देश में भी ऐसी ही शून्यता है; परन्तु उस सूनेपन को दूर करने वाला कोई नहीं है, है तो केवलखारा अश्रु-प्रवाह या फिर उर का कातर कम्पित उच्छ्वास।

कभी-कभी यह एकाकीपन खलने लगता है, जिसको कक्ष की चहारदीवारी और भी घनीभूत बना देती है। जब हृदय कुछ कहना चाहता है, तब उसकी विवशता को वे मूक दीवारें या स्वयं हृदय की कल्पना ही सुन सकती है। यही एकान्त जीवन की एक मात्र चिर साथिन रहेगी जिसके साथ जीवन की मृदुल झंकार को संसार के कर्कश कोलाहल में छिपाना पड़ेगा।

मृत्यु

एक दिन मैंने एक शव जाते देखा। मेरा मन प्रकृति की प्रत्येक जड़ चेतन वस्तु को देखकर प्रश्न करने लगा, क्या ये सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत और मेघ सत्य नहीं हैं ?

क्या इस पृथ्वी पर माता, पिता, भाई, बन्धु का वह घनिष्ट सम्बन्ध जो सारे परिवार को एक सूत्र में गूँथे रहता है, सत्य नही है ?

संसार में छिटका हुआ अनुपम सौन्दर्य, सांसारिकता के प्रति अत्यधिक ममता, चिरन्तन सत्य के प्रति अनन्यता, उपासक की उपास्य के प्रति अटलता क्या सत्य नहीं हैं ?

इन प्रश्नों की बौछार ने मेरे हृदय में एक उथल-पुथल मचा दी। यह हलचल निरन्तर मेरे हृदय में घुमड़ती रही, परन्तु मेरी क्षुद्र बुद्धि कोई सन्तोषजनक उत्तर न पा सकी।

एक दिन मैं सोचती थी सुख सत्य है, दुःख की एक झलक ने वह भ्रम दूर कर दिया। फिर सोचा संभवतः किसी का स्नेह सत्य है, पर वह सपना भी आज टूट चुका है। और आज आँखें देख रही हैं, मृत्यु सत्य है। इस धारणा पर आघात पहुँचाने की शक्ति मैं समझती हूँ, स्वयं विधाता में भी नहीं है।

प्रभाव

कोयल कूजती है, क्योंकि रसाल के बौर में गंध है। समुद्र में हलचल है, तभी तो उसमें लहरें उठती हैं। हृदय में भावनायें हैं तभी तो कल्पना का सृजन होता है। मदिरा में नशा है तभी तो वह मनुष्य को उन्मत्त बना देती है। और तुम रहस्यमय हो, इसी से तो मैं रोती रहती हूँ।

विषमता

अनेक आशाओं और उमंगों को अपने अंतर में समेटे मनुष्य इस संसार में अकेला ही आता है।

कोलाहल से पूर्ण जगती में उसका लालन पालन होता है। सुख की लहरियाँ और दुःख की भँवरिया उसके चारों ओर नृत्य सा करती रहती हैं। कभी सुख की एक तान बज उठती है तो कभी दुःख की कोई करुण रागिनी छिड़ जाती है।

एक दिन मनुष्य के पास अनायास ही मृत्यु का बुलावा आ जाता है जिसकी उसे इच्छा रहते या न रहते हुए भी स्वीकार करना ही पड़ता है।

जाते समय भी अकेला ही वह अशान्त कोलाहल पूर्ण निराश जीवन को लेकर इस संसार से अंतिम विदा माँगकर जाता है। जीवन की यह कैसी विषमता है।

निराकार

वृक्षों के झुरमुट में से झाँक चाँद टुकुर टुकुर किसी को देख रहा है। वह अपना काम करने के साथ ही साथ एकटक अटलता से किसी को निहार रहा है और नित्य ही उसकी खोज में आकुल रहता है और पता नहीं कब तक रहेगा।

टिमटिमाते हुए नक्षत्र भी तुम्हीं को खोजते हैं; परन्तु तुझको खोज नहीं पाते और इसी खोज में निशा के बीतने पर स्वयं भी खो जाते हैं।

पुष्पों की फैली हुई पंखुरियाँ तुम्हारे आलिंगन के लिए भुजा फैलाये हुए हैं, परन्तु उन भुजाओं में कोई भी तो नहीं आता। सारी पंखुरियाँ झड़कर गिर जाती है, उनकी सुरभि बिखर जाती हैं। वह व्यर्थ ही सूखकर गन्ध को खो मिट्टी में मिलकर मनुष्यों के पैरों से कुचली जाकर नष्ट हो जातीं है।

मैं भी हृदय से झाँक तुम्हारे प्रतिबिम्ब की छवि को खोज रही हूँ। पर खोज नहीं पाती। खोज भी कैसे पाऊंगी, तुम तो निराकार हो। इसी खोज में जीवन बीत रहा है और बीत जायगा।

सहारा

जब धैर्य का बाँध टूट चुका था, तब तुम उस बाँध को जोड़ने आये। जब हृदय में निराशा लबालब भर गई थी, तब तुम आशा का आलोक दिखाने आये। जब हृदय व्यथा-प्लावित था, तब तुम ममता का उपहार चढ़ाने आये। जब जीवन-दीप बुझने ही वाला था, तब तुम स्निग्ध स्नेह से उसे भरने आये। निर्दिष्ट पथ न पा सकने के कारण जब मन संकल्प विकल्प के भँवर जाल में गोते लगा रहा था और मुक्ति का कोई अन्य मार्ग शेष न था, तब तुमने मेरी भुजा को सहारा दिया। जब अभिलाषा की ज्योति मलिन पड़ चुकी थी, तब तुम उस मलिन ज्योति को उद्भासित करने आये। जब जीवन के मधुर स्वप्न धूमिल हो चुके थे, तब तुम आभा बनकर चमके। फिर मैं इस दैवी सहारे को ठुकरा कर अकृतज्ञ कैसे हो सकती हूँ!

निरालम्ब

अमा की घोर काली रात्रि है। सुदूर अंधकार में कुछ भी नहीं सूझता। पैर आगे बढ़ते ही नहीं। प्रकाश से आलोकित कहीं कोई आश्रय स्थल भी तो नहीं। अंधकार में भूला भटका असहाय पथिक कहाँ जाय? किधर जाये! क्या करे?

गहन बन है। कटीली झाड़ियों में वस्त्र उलझ-उलझ जाते हैं। धैर्य को पथगामिनी बना पग आगे बढ़ते हैं, परन्तु एक ओर निर्जन रात्रि का सघन काला अन्धकार दूसरी ओर भयंकर हिंस्र पशुओं का चीत्कार हृदय से साहस को निकाल बाहर फेंकता है।

आगे अनन्त अथाह जलराशि है। दूर से आता घोर आर्तनाद करता हुआ अविरल प्रवाह पथ को डुबाता मेरी ही ओर बढ़ता चला आ रहा है। आँधी चल पड़ी है। शीत पवन के प्रबल थपेड़ों से शरीर की रक्षा कर इस अथाह नद को पार करना है। यह सब मैं कैसे पार करूँगी? कहीं भी तिनके का सहारा नहीं। लघु दीप की हल्की लौ भी दूर-दूर तक कहीं टिम-टिमाती नहीं दिखाई देती।

बोध

जब नवयौवना रजनीवधू अपने नीलांचल के उपहार को सर्वत्र छिटकाती सारी जगती में अपनी मादकता को बिखेर अनुपम सौन्दर्य की सृष्टि कर देती हो, मादक पवन के शीतल झोकों से जब शरीर सिहर जाता हो, हिमांशु का मधुर हास्य जब क्षितिज में भर गया हो, उन अलसित पलों में हे अवसाद भरे मन, यदि तुम्हें किसी की स्मृति व्यथित करे तो तुम चुप चुप सिसकना।

उर-सिन्धु में जब उद्विग्नता पवन से उमड़ कर लहरियों में ज्वार उठे औ र नवनीत सा सुकुमार हृदय उस रेले के आघात को न सह सके, तब हे आकुल मन, तुम अपनी पलकों को व्यर्थ गीली न बनाना, अंचल को भिगो कर सुप्त व्यथा को न जगाना, सघन विस्मृति की मधुर थपकियों से उसे सुला देना।

मुझे मालूम दय में अमा की घोर अँधियारी फैली है, पर तुम नहीं जानते कि वेदना ही सुख है। सामीप्य मे विकलता है, प्रतीक्षा में आल्हाद। दर्शन में दूरी है, चिन्तन में निकटता। भोले मन समीपता में वह सौन्दर्य कहाँ, जो कल्पना-लीनता में है।

निर्देश

हे मन यदि तुमने दीप जलाया है, तो उसे अंतर के निभृत कोण में ही छिपाकर रखना। रहस्य में ही रस है, उसके खुलने पर सारा सौन्दर्य नष्ट हो जायगा।

दीप को तुम धीरे-धीरे जलने दो, चुप चुप जलने दो। इसी दीप को लेकर गहन रजनी की प्रशान्त नीरवता को पार करना है। एकदम जलकर बुझ जाने से इसके प्रकाश में घूमने वाली चल छाया जब धुंधली होकर विलीन हो जायगी, तब तुमको किसका सहारा रहेगा? एकाकीपन का उदास भार तुम वहन न कर सकोगे मेरे मन।

इसी से तो कहती हूँ इस दीप को चुप चुप जलने दो, मन्द मन्द जलने दो

परामर्श

हे मन आँखों की कोरों में अश्रुओं को ढुलकाना ही तुमने सीखा है पर उन्हें पीजाना ही जीवन का रहस्य है, सौन्दर्य है।

इन अश्रुओं पर हँसनेवाले बहुत हैं, इन्हें समझनेवाले कम। हृदय को दुखा इन्हें निकालने वाले बहुत हैं, पोछने वाला कोई नहीं। तब हे मन, तुम चुप चुप रोया करो जिससे इन्हें कोई देखे न!

पछतावा

अपरिमित धैर्य धारण कर इस भीड़ मे मैं तुम्हें खोजने निकली। घोर कोलाहल में मेरी क्षीण वाणी कौन सुनता ? धक्का-मुक्की का स्वभाव नहीं, साहस नहीं। असंख्य प्राणियों की ऊंची दीवार के परे झाँक कर मैं तुम्हें देख न सकी और तुम स्वयं सभी को चीरकर इधर आ न सके, मन में यही एक पछतावा रह गया।

अब तन्त्री के तार ढीले हो चले हैं। उनसे मधुर ध्वनि झंकृत न होकर टूटी फूटी बेसुरीली आवाज़ ही निकलती हैं। हाथ उसे बजा नहीं पाते, बजाते हैं तो करुण रागिनी उमड़ती है।

मैंने तुम्हारे लिये हृदय में असंख्य साधें सँजोई थीं; पर वे सब बड़ी निर्दयता से कुचल दी गईं। जीवन की एक भी साध तुम पूरी न कर सके।

व्यर्थ

वह समीर ही क्या जो किसी को शीतल न करे। वह सुरभि ही क्या जो किसी पर अपनी मादक गंध का उपहार न चढ़ाये। वह पुष्प ही क्या जिसका मकरन्द किसी को लुभाने से पहले ही झड़ जाय। वह काकली ही क्या जो किसी को आकर्षित न करे।

वह निशा ही क्या जिसकी गोद में मन चुप-चुप सिसकियाँ न भरे। वह उषा ही क्या जिसको देख मन स्फूर्ति का अनुभव न करे। वह उदधि ही क्या जिसमें कभी उर्मियों का आर्त्तनाद न हो। वह सरिता ही क्या जिसमें कभी कलकल ध्वनि न निकले। और वह हृदय ही क्या जिसमें कभी किसी की मधुर स्मृति न जगे!

आग्रह

मेरे इस संसार से जाने पर मेरी जीवन-समाधि के खँडहर पर कोई भी दो बूँद आँसू न बहाना। अतीत की सोई मेरी मधुर स्मृतियों को अपने हृदय में न जगाना। यदि खिले लहराते पुष्पों को देख मेरी धुँधली स्मृति सजग हो उठे, तब यह समझकर कि मेरा जीवन-सुमन इस धूलि में कभी खिला ही न था, उस व्यथा को सूने में सुला देना। यदि इतना भी न कर सको, तो कम से कम मेरी अन्तिम बेला को आँसुओं से धूमिल न करना।

निश्चय

पलकों मे तुम्हारी ही मूर्ति शयन करती रहती है, परन्तु मैं उसको जगाना नहीं चाहती। पलकों मे उसके सोते रहने से तो मैं अमित सुख पाती हूँ। परन्तु जगाने पर तो तुम भाग जाओगे। फिर मैं तुमको पकड़ कैसे पाऊँगी।

विछोह में सुख है। मिलन में भी सुख है। परन्तु मिलने में भाव-सौन्दर्य बिखर जाता है, स्वप्नो की दीवार हट जाती है। तब, मैं तुमसे पृथक ही रहना चाहती हूँ। तुम्हारा मिलन नहीं चाहती।

मनुहार

मेरे मन, तुम मेरी एक नहीं मानते। तुम चुप रोते हो, मैं मूक चितवन से चुरा लेती हूँ; तुम मचलते हो, मैं हृदय की तरतला से मना लेती हूँ; तुम रूठते हो, मैं किसी प्रकार तुम्हें समझा लेती हूँ। फिर भी तुम रोया ही करते हो। ऐसा जानकर मुझे बड़ी व्यथा होती है।

मेरे भोले मन तुम कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं समझते। सच तुम बड़े भोले हो। मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ और कैसे बताऊँ कि जब तुम चुप चुप अपने रुदन से मेरे मर्म-स्थल को छू देते हो तब मेरा उर टूक-टूक हो जाता है। मेरे मन, तन्त्री के सारे तार आज ढीले पड़ चुके हैं। वे एक ही आघात से टूट सकते हैं। तब क्या तुम उन तारों को टूटते ही देखना चाहते हो? क्या तुम नहीं चाहते कि उनमें से मृदु ध्वनि निकले, मस्ती भरी रागिनी छिड़े।

मेरे मूक सहचर, यदि तुम्हें मेरी इतनी भी चिंता नहीं, तब मैं कुछ नहीं कहती।

जलन

दीपक जलता ही रहता है और उसकी यह जलन जीवन के अंत तक नहीं मिटती। अन्तिम समय भी बुझने के पूर्व वह एक बार सारी शक्ति से जलकर फिर सदा के लिए शांत हो जाता है। उसके मिट जाने पर भी तो उसकी ज्वलनशील आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। निरन्तर जलते रहने के कारण ही तो उसकी चिनगारियाँ सूने आकाश में नक्षत्रों के रूप में व्याकुल बिखर जाती हैं। पर वहाँ भी वे छटपटाती ही रहती हैं।

अन्याय

नेह कणों से सिंचित लहराते हुए हृदय-वसंत की हरियाली को तुमने सहज ही में उजाड़ डाला है। साध की कलियों को क्षुब्ध निर्दयता से झकझोरा है।

भावोदधि में हलचल उत्पन्न करके लहरों को निराश वापिस लौटा दिया है और मन की छोटी सी नैया को तूफानी तरंगों में तैरने को छोड़ गये हो। मुझे भय है कि कहीं वह कूल किनारा न पा सकने के कारण भँवर जाल में उलझकर डूब न जाये। यदि ऐसा हुआ और एकाकिनी मैं इस आकस्मिक आघात को न सँभाल सकी, तब मेरे प्रति तुम्हारा यह कितना भारी अन्याय होगा!

परिवर्तन

जिन तरल नयनों से हँसने पर अपूर्व मधुरिमा की सृष्टि हुआ करती थी, अब उनकी सूनी कोरों से आँसुओं की झड़ी बरसती रहती है। जिस भोले मुख पर पहले सदैव मादक हँसी छपी रहती थी, अब उस पर गंभीरता और करुण व्यथा ने अपना अमिट अधिकार जमा लिया है। पहले जो हृदय मधुर सोई हुई कल्पनाओं के जगते नवीन स्वप्न पाला करता था, अब उसमें जलधि-सा विस्तृत और निशि-सा काला अंधकार विचरता रहता है। अब तो हँसने पर भी जैसे रोना ही उमड़ता है। जिस उर प्रांगण में प्रसन्नता थिरक कर सहास्य क्रीड़ा करती हुई रश्मियों की वर्षा किया करती थी, उस प्रांगण में अब उदासीनता अवसाद का दीपक जलाये बैठी है।

अनुमान

विधाता ने भाग्य-लिपि में सुख लिखा ही नहीं। मैं सुख को अपनाना भी नहीं चाहती। दुःख ही चाहती हूँ। उसकी प्रतिमा स्थापित कर उसकी पूजा करना चाहती हूँ।

मुझे ऐसा लगता है जब विधाता सबको सुख की अतुल राशि बाँट रहा था तब मुझे ठोकर लग गई थी।...

आशंका

पथ अंधकारमय है, शून्य है, विषम है, अनन्त है। इस अँधेरे पथ की अनन्त शून्यता में मुझे भय है कि कहीं मैं स्वयं न खो जाऊँ।

समुद्र में हलचल है, आकाश में सूनापन है, निशा की गोद में निस्तब्धता व्याप्त है, पवन में कम्पन है, पृथ्वी पर कोहरा छाया है जिसने दृष्टि को धुँधला बना दिया है। मुझे भय है कि कहीं यह धुँधलापन मेरे जीवन की सहज गति को धुँधला बना मेरी उद्विग्नता को बढ़ा न दे।

प्रकृति आनन्द में डूबी हुई है। वृक्ष उस पर चँवर डुलाते हैं। सुरभि उसको गंध का उपहार भेंट चढ़ाती है। पुष्पों से झड़ा हुआ मकरंद उसके स्वागत के लिए वसुधा पर लोट गया है, मलयाचल से चन्दन की गंध समेटे नहीं सिमटती। नदी की उत्ताल तरंगें तीव्र गति से बहकर उसका चरण स्पर्श करने को विह्वल हैं। दूर से बहकर आता हुआ पवन उसका आलिंगन करता है जिसके स्पर्श से वह सुंदरी सिहर उठती है।

मुझे भय है कि कहीं इस सुरम्य वातावरण को देख मैं लुभा न जाऊँ।

निरपेक्ष

नीले आकाश के वितान के नीचे रजनी की नीरव छाया में मुस्काती चन्द्रिका मेरे उर को बिखेर सहास्य क्रीड़ा करती है।

सरिता के उस पार शुभ्र शिलाओं पर लेटी हुई श्वेत रश्मियाँ जल के मुकुर में अपना चंचल मुख देख मेरे हृदय को गंभीर बना सानन्द थिरकती फिरती हैं।

उदधि की तरंगें तट से बारम्बार टकराकर मेरे हृदय में हिलोरें उठा शान्त हो उन्हीं में लीन हो जाती हैं।

दृष्टिकोण

वसंत को सभी पहचानते हैं, पर पतझर में वसंत सबकी दृष्टि नहीं देख पाती। सुख का स्वर्ग सभी को प्रिय है, पर साधना के दुर्गम मार्ग से उस तक पहुँचने का साहस सभी में कहाँ होता है?

साथी, हँसना सभी जानते हैं, पर उस हँसी से दूसरों के अधरों पर मुसिकान की रेखा दौड़ाना कितनों ने सीखा है? आँसुओं को संचित करना सभी जानते हैं, पर उन्हें दूसरों के लिए बहाना कितने जानते हैं?

द्वैत

अतिथि ! तुम नहीं जानते मेरा घर इतना छोटा है कि उसमें केवल एक ही व्यक्ति रह सकता है, एक ही व्यक्ति रुक सकता है। यदि दूसरा कोई आया तब उसे निश्चय ही निराश लौटना पड़ेगा।

इतना और जान लो कि मेरा घर सूने में स्थित है।

प्रत्यावर्त्तन

परदेशी, तुम इस कुटिया के द्वार पर अतिथि बनकर आये ही क्यों ? हृदय कुछ पूछना चाहता है, कुछ कहना चाहता है, पर कंठ अवरुद्ध है।

इस आकुल जीवन का उपसंहार दुखान्त होगा, यह मैं समझ चुकी हूँ; पर मेरे प्रिय सहचर, तुम बिना कुछ जाने-पूछे चुप लौट जाओ। मैं बन्दिनी हूँ, पर तुम्हारा पथ अभी खुला पड़ा है।

भय

सखे, लौट जाओ। इस कुटिया के सारे द्वार बन्द पड़े हैं। सूनापन भर गया है। मुझे भय है कि कहीं तुम्हें ठोकर न लग जाय। यदि ऐसा हुआ तब तुमको तो आघात लगेगा ही, पर तुम किसी अपरिचित के सूने हृदय को भी चिर व्यथा की बेड़ी पहना जाओगे, यह तुम नहीं जानते।

साथी, मान जाओ। हठ न करो। शायद तुमने जीवन में निर्दयता से हृदयों को कुचलना ही सीखा है। मेरी आँखों को, मेरे जीवन को आँसुओं से न भरो। मुझे भय है कि यदि ये आँसू असमय में उमड़ आये, तब मेरे मन-तट को तो वे डुबायेंगे ही, मैं कहती हूँ, तुम्हारी हृदय-नैया भी उनमें डगमगा उठेगी। साथी, मैं दुर्बल हूँ, उसे डूबते न देख सकूँगी; पर उसे मैं बचा पाऊंगी कि नहीं, अपने इस साहस का अनुमान मुझे नहीं है।

आवश्यक

जीवन की यह कैसी विवशता है कि सब कुछ चाहने पर भी कुछ किया नहीं जा सकता। दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए अपनी प्रसन्नता को दबाना पड़ता है, दूसरों के जीवन में वसन्त देखने के लिए अपने जीवन को पतझड़ बनाना पड़ता है, दूसरों के मुख पर हास्य की रेखा लाने के लिए अपने हृदय के उच्छ्वासों को छिपाना पड़ता है, दूसरों को सुख की नींद भरते देखने के लिए रात-रात भर आँखों में रातों को बिताना पड़ता है।

तुम्हारा मिलन

मेरे तुम्हारे मिलन के बीच एक धागा है जो टूट तो सकता है; लेकिन तोड़ा नहीं जा सकता। मेरे तुम्हारे मिलन के बीच दूरी है—ऐसी दूरी—जिसे कम तो किया जा सकता है; पर पार नहीं किया जा सकता। मेरे तुम्हारे मिलन के बीच एक बहुत ऊंची दीवाल है जिसके पार झाँका तो जा सकता है, पर उसे उलाँघा नहीं जा सकता।

अंधकार

हृदय के रंध्रों में घना अंधकार छा गया है। विश्व की शतशत मधुर मुसिकानें भी उसमें प्रकाश नहीं ला सकतीं। इस अंधकार ने बहुत ही गहरे में अपनी समाधि लगाई है। वह कहीं और जाना भी तो नहीं चाहता। तब मैं उसे अन्यत्र भेज कर दुखी बनाना भी नहीं चाहती।

बीच-बीच में वह अपनी पलकों को खोल मेरे हृदय में एक नवीन व्यथा को जन्म दे जाता है। कभी-कभी उसकी अखंड समाधि मेरे हृदय को मथ डालती है। तब क्या वह मुझे दुःखी बनाकर ही अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है।

चिंता

हाथ पुष्पों से बँधे हैं और पैर काँटों से। हाथ स्वतन्त्र भी हो सकते हैं, पर चरण अवरुद्ध हैं। वे आगे नहीं बढ़ पाते। बढ़ते हैं तो घायल हो जाते हैं।

कहीं ऐसा न हो साथी, कि तुम तक पहुँचने से पहले ही मैं आहत होकर गिर पड़ूँ?

उपेक्षा

श्यामा रजनी अपने सूने अंचल में छिपा थाल भरे नक्षत्रों को सजाकर लाई और निभृत क्षितिज के उस ओर उनको बिखेर कर नृत्य का आयोजन करने लगी।

हृदय मौन था, शान्त था, और था कुछ अधिक गंभीर। उसने तन्त्री के तारों को न छू फेंकी एक वेदना मिश्रित गहरी निःश्वास। उसने मधुर रागिनी को न बजा छेड़ा एक युग-युग का संचित करुण वेदना भरा आलाप। पैरों में उसको नूपुर न पहना, पहनाये उसको मौन रुदन की सिसकियों से निकले हुए तप्त उच्छ्वास। हास्य की चन्द्रिका से उसका अभिषेक न कर पहनाई उसे फीके हास्य की म्लान माला। नृत्य का परिधान न पहना पहनाया उसको विषाद का वस्त्र।

श्यामा रजनी का सूना अंचल सूना ही रह गया। वह अमा के रोते हुए अलसित पलों में ही आई और अमा के रोते हुए आकुल पलों में ही चली गई। आँखों में अमा का गहरा काजल लगाकर आई और उसको बहा अँधियारे को और भी घना बना चली गई। जगती पर अपना सौरभ छिटकाने आई और उसको खोकर चली गई।

आई थी मुझे मनाने, चली गई स्वयं खीझकर। आई थी भरा हुआ उर लेकर, चल दी मेरे उर को बिखेर कर। आई थी प्रेम और नेह के कणों को बरसाने, चली गई हृदय में उपेक्षा के अक्षत समेट कर। वह चली गई...नेत्रों को तरल बना...बहुत दूर चली गई।

कसौटी

सखे, परवशता की बेड़ियाँ हैं जिनको तोड़ा नहीं जा सकता। परिस्थितियों की प्राचीर है जिसको लाँघा नहीं जा सकता। संदेह के तप्त अंगार हैं जिन पर पैर नहीं रखा जा सकता। सामाजिक बन्धनों के रोड़े हैं जिनको कुचला नहीं जा सकता। तुम्हारे लिए हृदय के मोतियों की माला है, परन्तु सबके सामने उसको पहनाया नहीं जा सकता। अश्रुओं का अजस्र निर्झर है जो सबके सामने बहाया नहीं जा सकता। मंद मुसिकानों की अतुल संचित निधि है जो सबकी आँखों के सामने बिखेरी नहीं जा सकती। भावों की सुरम्य वाटिकायें हैं जिनको सबके सामने खिलाया नहीं जा सकता।

मर्म

जीवन एक उलझी कहानी हो चला है, पता नहीं उसे कैसे आगे बढ़ाया जाय। बहुत दिनों से हृदय प्रांगण में झिलमिलाती किसी की चल छाया ने उसे और भी उलझनमय बना दिया है। उस छाया की सजल स्मृति को उकसाना भी नहीं चाहती, बुझाना भी नहीं चाहती, आगे बढ़ाना भी नहीं चाहती, पीछे लौटाना भी नहीं चाहती। रो रो कर हृदय से मिटाना भी नहीं चाहती। यदि रोई तो वह बह जायगी, धुल जायगी, अतीत की एक बिखरी कहानी बनकर रह जायगी...तब इस मर्म को ऐसे ही छिपा रहने दो, ऐसे ही उलझा रहने दो, ऐसा ही बना रहने दो।

पथिक से

पथिक ! इस वृक्ष की शीतल छाया में क्षणभर विश्राम कर लो। आगे चलकर तो पग पग पर तुमको काँटे और धूप ही मिलेगी। तब इस क्षणिक सुख की अवहेलना न करो। यहाँ पर तुम अनुग्रह को ठुकरा कर जा रहे हो, आगे चलकर जीवन संघर्ष का युग ही तुम्हारा युग होगा और तब यह अनुग्रह भी उपेक्षित होकर सो जावेगा।

पथिक ! अपना अपना बसेरा सभी खोज रहे हैं। तुम्हारे ऊपर से उड़ती हुई आकुल पक्षियों की पंक्ति कलरव करती हुई निकल गई; पर तुमने यह पुकार नहीं सुनी। कैसे हो तुम ? जिस मंदिर पर तुम पहुँचना चाहते हो उसके सोपान भाग्य लिपि से जर्जर हो गये हैं। संभव है उपास्य के समीप पहुँचाने से पहले ही वे तुमको गिराकर तुम्हारे सपने को चूर-चूर कर दें। आगे चलकर पग-पग पर तुमको निराशा ही निराशा मिलेगी और मिलेगा निविड़ सघन काला विस्तृत अन्धकार। तब ! तुम्हारे मार्ग को कौन निर्धारित करेगा। उस समय अपने ही रुदन की मौन सिसकियों में तुमको सो जाना होगा।

मंदिर ऊंचा है, मार्ग जटिल है, उस तक पहुँचने के सोपान जर्जर हैं। तब; जितना सुख मिला है उसी को अपनी अंजलि में भरकर आगे बढ़ो, उसकी उपेक्षा न करो पथिक।

प्रतीक्षा : एक समझौता

लम्बी चौड़ी प्रतीक्षा के बाद भी पीछे से यही अस्फुट ध्वनि आई...जीवन भी तो एक प्रतीक्षा ही है।

तुम्हारी प्रतीक्षा में जीवन का एक विपुल भाग खो दिया, परन्तु न खोया हृदय प्रांगण में अनन्त काल से झिलमिलाते हुए अपने उपास्य की प्रतिमा के जगमगाते हुए उज्जवल प्रकाश को।

प्रतीक्षा की सीमा को लांघकर धैर्य की देवी उद्विग्न हो उठती है। नयन बड़े-बड़े अश्रु छलका कर तुम्हारे चरणों की धूलि को धो डालते हैं। तब भी तुम नहीं पिघलते। सच! तुम बड़े निठुर हो। जीवन के प्रभात में तुमने अपनी मधुर झांकी दी, पर दर्शन देने के पूर्व ही तुम छिप गये। छिपने के साथ ही अन्तकाल तक प्रवाहित होने वाले जीवन की सहज गति को भी निश्चित कर गये। धूमिल जीवन की अन्तिम बेला में आज मैं यह समझ पाई हूँ की ससीम को असीम की प्राप्ति अलभ्य है। अन्तःकरण से भी यही अस्फुट ध्वनि निकलती है, जीवन एक भूल है, प्रतीक्षा एक समझौता। तब ?

रहस्यमय

तुम सदैव ही रहस्य का विषय रहे हो और रहोगे। तुम्हें जितना समझने की चेष्टा की उतना ही उलझनमय होते गये। तुम्हारे जितना समीप आई तुम उतना ही दूर होते गये और जितना तुमसे दूर होने की सोची उतना ही तुम समीप आकर आकर्षण का विषय बनते गये। यह तुम्हारा कैसा रहस्य है?

जितना ही तुम्हारा चिन्तन किया, उतना ही तुम जटिल और असूझ होते गये। पूजन की थाली हाथ में उठाते समय तुम अदृश्य हो गये। तुम्हारी बहुत खोज की, पर तुम न मिले। एक दिन जब अपनी एकान्त शान्त कुटीर में बैठी कार्य में व्यस्त थी; तब सहसा तुम्हारी झलक का आभास हुआ। जब बाहर झांक कर देखा, तब तुम जा चुके थे। वहाँ कोई न था। एक दिन गोधूलि बेला में तुम बिना आशा के ही आ चमके। उस समय मेरा रोम-रोम आनन्द से पुलक उठा। आँखों की सूनी कोरें आँसू बहाने लगीं। मैं कुछ कह रही थी। तुम भी शायद कुछ कह रहे थे। हाँ मेरी मिटी हुई स्मृति में यह बात अब भी बनी है कि बात कहते-कहते तुम्हारा गला भर आया था और आवाज़ आँसुओं के रेले में बह गई थी। पर मैं कुछ समझ न सकी थी और मैंने केवल आँसुओं से ही तुम्हारा स्वागत किया था। ...

प्रकृति और मैं

स्वच्छ निखरी हुई चाँदनी की निस्तब्धता में कौन मेरी जीवन-वीणा को झकझोर जाता है। कोयल की टीस भरी काकली के समान कौन क्षुब्ध रागिनी को छेड़ जाता है। संध्या की धूमिल आभा में यह अतीत की स्मृति सी कैसी किरण उद्भासित हो उठी है।

अरे! रात्रि के सूनेपन में यह नूपुरों की झनकार कहाँ से आ रही है। मुकुलित पुष्प कलिकायें लतिकाओं के आलिंगन में मौन सो रही हैं; पर यह 'मर् मर्' ध्वनि किस दीन वेदना का संदेश ला रही है। वायु निस्पन्द है पर वह भी चुपचाप करवटें बदल गर्म निःश्वास फेंक रही है। उदधि की आर्त्त क्रन्दन करती हुई ऊर्मियें भुजा उठा कर किसको पुकार रही हैं। प्रकृति आज क्यों व्यग्र हो अश्रुकण बरसा रही है? क्या वह भी अतीत के स्मृति-जाल में उलझ सजला हो उठी है।

मैं खड़ी खड़ी प्रकृति की ये उदास मौन क्रीड़ा देख रही थी। तभी, मेरी भी सूखी बरौनियाँ गीली हो उठी थीं।...

अधूरा चित्र

सन्ध्या की स्निग्ध छाया में अशोक वृक्ष के नीचे दीपक के प्रकाश में तुम्हारे शून्य चित्र के खाके पर तूलिका से रंग भर रही थी। चित्र अभी पूरा न हो पाया था।

सारा विश्व रात्रि की नीरवता की गोद में निश्चिन्त सो रहा था। दोपहर रात्रि बीत गई। चित्र दीपक के धुँधले प्रकाश में बड़ा सुन्दर जान पड़ा। उठा कर रख दिया। पक्षियों के कलरव से विश्व अँगड़ाई लेकर जाग उठा। जनरव की चहल पहल से मेरी निद्रा भी टूटी। मैं अत्यधिक प्रसन्न थी, थिरकती हुई मानव प्रसन्नता को देख। पर जैसे किसी ने कठोर प्रहार किया हो चित्र को देखकर। रात्रि के मलिन प्रकाश में बनाया हुआ चित्र तो धुँधला है। वह तो अधूरा ही रह गया।

दूसरी सन्ध्या हुई। फिर तूलिका से चित्र को भरने लगी। रात्रि आई। प्रातः होने पर उषा की अरुणाई मे वह चित्र फिर भी पूरा न हो पाया। जीवन की साधना ही जैसे अधूरी रह गई और तूलिका पता नहीं क्यों हाथों में ही पड़ी रह गई। शायद किसी दिन चित्र पूरा हो जाये।

स्वप्न भंग

आँखें तुम्हारी प्रतीक्षा करते करते पथरा गईं; पर तुम न आये।

पैर चलते चलते विजड़ित हो गये; पर तुम विचलित न हुए। कैसा है तुम्हारा हृदय ?

हृदय की कोमल भावनायें कुंठित होकर बिखर गईं। निर्दयता की भारी शिला से वे कुचल दी गईं। हृदय रखते हुए भी तुम हृदय को न समझ सके। कैसा है तुम्हारा रहस्य ?

तन्द्रा की अवस्था में स्वप्निल नेत्र तुम्हीं को खोज रहे थे। सच ! तभी तुमको देखा। तुमको मनभर देख भी न पाई कि निष्ठुर प्रातः का सन्देशा देने वाले, पक्षियों के कलरव से स्वप्न उषा की रंगीन चादर में छिपकर स्वप्न बनकर रह गये। जीवन भर तुमको न पा सकी। कैसी मौन है विवशता। क्षण भर भी तुमको मन की पुतली एवं हृदय के नेत्रों से न देख पाई कि सुखद स्वप्न टूट गया। सदैव के लिए। हाँ सदैव के लिए। एक युग बीत गया। तुम्हारी आराधना करते करते। प्रतीक्षा की समाधि पर अन्त में दो बूँद आँसू भी न निकल सके, क्योंकि आँसू की निर्झरणी अब बिल्कुल सुख चुकी है।

आँसू

ये भोले नयन करुणा मे भी नीर बहाते हैं और असीम सुख में भी। सुख में मुख पर स्मिति की मृदु रेखा खिंच जाती है और दुःख मे विषाद की कालिमा अंकित हो जाती है। तब भोला आनन आँसुओं से धुलकर स्वच्छ निखर आता है। परन्तु ये अश्रुकण नेत्रों के चिर परिचित हैं और अरुण नेत्रों की छोटी सी कोठरी में ऐसे ही छिपे रहते हैं जैसे बादलों के अवगुंठन मे शशि का सुन्दर मुख, सन्ध्या के धुंधलेपन में रात्रि की कालिमा, तिमिर की घनी चादर मे उषा की अरुणाई, रजनी के शून्य नीले अंचल मे टिमटिमाते नक्षत्र, उनींदी पलकों में बन्द स्वप्निल नेत्रों के मध्य अधूरे मीठे सपने और हृदय के छोटे से आंगन में कोमल कल्पनायें।

अस्थिर

बालुका राशि को हाथों की अंजलि में रोकने का विफल प्रयत्न करती हूँ, परन्तु वह खिसकती ही जाती है, रुक नहीं पाती। पता नहीं क्यों ?

सरि के जल को छोटे से हाथों में बाँधकर रखना चाहती हूँ; पर वह बँधकर कहाँ रह सकता है ?

जल की धारा में लहरें उठती ही रहती हैं; पर रुक नहीं पातीं। एक के विलीन होने पर दूसरी का उठना और दूसरी के डूबने पर तीसरी का उठना। ठीक यही क्रम चलता रहता है।

भावनाओं को कल्पना की डोरी में गूंथकर हृदय-नीड़ में बाँधकर रखना चाहती हूँ। परन्तु यह कैसा पागलपन है।

कहीं सिकता-कणों ने स्थिर रखना सीखा है ? जल ने बँधकर रहना सीखा है ? लहरों ने रुककर किसी की बातों को क्षणभर सुनना सीखा है ? भावनाओं ने शृंखलाओं में बँधना सीखा है ? और कल्पनाओं ने सोना सीखा है।

आदि और अवसान

लहरें उमंग में आकर ऊँची-ऊँची उठती हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण निराशा की गोदी में बैठ जाती हैं। हृदय में बड़ी प्रसन्नता को भर भावनायें उठती हैं; परन्तु कपोलों पर दो बड़े-बड़े आँसू छोड़ जाती हैं। आकाश की सूनी चादर में तारे असीम उल्लास को भरकर खिलते हैं; परन्तु उन बेचारों का सारा जीवन फड़फड़ाने में ही बीत जाता है। उषा रश्मियों की शुभ्र ओढ़नी ओढ़कर उदय होती है; परन्तु सन्ध्या उस पर अंधियारे का काजल पोत जाती है। वसन्त अपनी सम्पूर्ण विभूति को अंजलि में भरकर सारी जगती पर लुटाता है; पर अनजाने में ही एक दिन पतझड़ का संदेशा ले आता है! पुष्प-लतिकायें हवा के चलने से मस्ती में झूम उठती हैं; परन्तु दूसरे ही क्षण आँधी से उनका सारा मकरंद झड़ जाता है। तारों भरी विभावरी मीठे सपनों से भरी होती है; परन्तु उनके साथ हृदय की धड़कन छिपी रहती है। तब क्या हर जगह सुख के पीछे दुःख ही लगा रहता है?

आवरण

आकाश में नक्षत्र, नक्षत्रों में टिमटिमाहट और टिमटिमाहट में विश्व की जलन छिपी रहती है।

समुद्र में जल, जल में लहरें, और लहरों में चंचलता भरी रहती है।

पलकों में आँखें, आँखों में नींद, और नींद में सपने रहते हैं। मन में स्मृति, स्मृति में आँसू और आँसुओं में पीड़ा रहती है। ठीक इसी प्रकार जीवन-वीणा के तारों में रागिनी, रागिनी में स्वर-लहरी और स्वर-लहरी में जीवन का कसकपूर्ण संदेश रहता है।

पता नहीं

कब वसन्त आया, कब चला गया। कब वृक्ष पर पत्ते आये कब सूख गये। कब पुष्प में मकरन्द आया और कब झड़ गया। पता नहीं।

कब स्वप्न देखा, कब टूट गया। कब लहरें उठीं, कब वापिस लौट गईं। कब घटायें उमड़ीं, कब बरस गईं। पता नहीं।

कब स्मृति जगी, कब विस्मृति की गोद में सो गई। कब आँखों में आँसू आये, कब सूख गये। कब ओठों पर हँसी आई और कब सदा के लिए सो गई। कुछ पता नहीं।

क्यों रोते हो

जब तुम्हारी आँखो में आँसू थे, दृष्टि में धुंधलापन छाया था और उस धुंधलेपन मे जीवन का क्रन्दन तैर रहा था; तब भी मैंने तुमको हँसते ही देखा था।

जब हृदय मे करुण रुदन छिपा था, जीवन में आँसू थे और उनको कपोलों पर ढुलकना मना था, तब भी मैंने तुमको हँसते ही देखा था।

भाग्य की पगडंडी असमय में अँधियारा छा जाने से जब रास्ता भटक गई थी, निराशाओ के घने बादल मँडरा रहे थे, विषाद की कालिमा गाढ़ी हो गई थी, संघर्षों की अधियां जोरों से चल रही थी, तब भी तुम्हारे मुख पर किसी ने आँसू न देखे थे।

आज जब जीवन का कटीला मार्ग साफ़ हो गया है, निराशा की बदली घट छट चुकी है, कालिमा से शून्य आकाश स्वच्छ निखर आया है, कठिनाइयों की भरी गठरी अब हल्की हो गई है, अश्रु की गहरी सरि अब उथली हो चली है, संघर्ष का जीवन अब बीत चुका है और जीवन की अंतिम मंज़िल लगभग पूरी हो चुकी है; तब इन सुख के पलों में भी हे मन, आज तुम चुप-चुप क्यों रोते हो ?

मैं

मैं वह छाया हूँ जो तुम्हारे संग संग रहती हूँ। मैं वह बादल हूँ जो तुम्हारे लिये छा जाता है। मैं वह बिजली हूँ जो तुम्हारे लिये चमकती है।

मैं वह फूल हूँ जिसकी पंखुरियाँ तुम्हारे स्पर्श के लिए खिल उठी हैं। मैं वह गन्ध हूँ जो तुम्हारे लिए विकीर्ण होती है। मैं वह मकरन्द हूँ जो तुम्हारे लिए रक्षित है।

मैं वह सरिता हूँ जो तुम्हारे लिए उमड़ती है। मैं वह आँसू हूँ जो तुम्हारे लिये ढुलकता है। मैं वह निर्झर हूँ जो तुम्हारे लिये झरता है।

मैं वह दीपक हूँ जो तुम्हारे लिए जलता है। मैं वह तारा हूँ जो तुम्हारे लिए टिमटिमाता हैं। मै वह चाँद हूँ जो टुकुर टुकुर तुम्हारी ही छवि को खोजता है मेरे आराध्य, केवल तुम्हारी छवि को...

साधन और साधक

रंग से भरी प्यालियाँ अभी रखी हुई हैं। तूलिका धरा पर पड़ी हुई है। चित्र अधूरा ही रह गया है। पता नहीं चित्रकार कहाँ चला गया है।.....

प्रतीक्षा

प्रभात काल से तुम्हारी बाट देख रही थी, परन्तु अब सन्ध्या हो चली है। पुष्पों की माला गूँथी थी, वह अब म्लान पड़ गई है। जो पुष्प तुम्हारे चढ़ाने को तोड़े थे वे मुरझा गये हैं। अश्रु के रेले में मेरे जीवन के गान बिखर गये हैं। करुणा का छन्द अधूरा रह गया है। मधुमास की प्रतीक्षा करते करते पतझड़ आ पहुँचा। पीले पत्ते झड़कर अतीत की कथा दोहरा गये।

आँखों में आँसू भर और पैरों में व्यथा की बेड़ी पहन तुम्हारी कुटिया की ओर पैर बढ़ाये। तब आँखों के आँसू सूख गये थे और कुटिया का द्वार बन्द हो चुका था। बहुत समय बीत गया तुम्हारे कुटीर के द्वारा पर बैठे बैठे। शायद किसी दिन कुटीर का द्वार खुले।

अधूरा

कल्पनायें सोई हुई हैं। सपने टूट गए हैं। साधें घुटी हुई हैं। आँसू रुके हुए हैं। वाणी मौन है। कहानी सजल है। व्यथा का छंद अधूरा है। करुण गान की लय मंद है। वेदना सुप्त है। तब, कहानी को कैसे लिखा जाए और कैसे उसको आगे बढ़ाया जाय? सब कुछ अधूरा ही रह गया।

आगमन

पगली आँखें शिथिल होकर स्वप्न-लोक में विचरण करने लगीं। पलकों की सुकुमार छाया में थककर सो गईं। गर्म गर्म तप्त अश्रुओं ने व्यथा पीड़ित उर को शीतलता दी। आहें विवशता की दीवारों से टकरा कर उद्विग्न होकर नीरवता में खो गईं। कपोल पर मोती ढुलक कर आहत वेदना को सहला गए। म्लान अधरों पर वेदना फीकी हँसी हँसकर चली गई। मुख पर विषाद बिखरकर अपनी निशानी छोड़ गया।

आँखों की रोली सूनेपन में बिखर गई। तभी तुम आहों में छिपकर आये और मुसकानों में आकर सो गए। पता नहीं फिर कब चुपके से चले गए।

पुष्प

पुष्पों का मकरंद ही मेरी वेदना है। पुष्पों की पंखुरियों का खिलना ही मेरे हास्य का बिखरना है। सुरभि का उड़ना ही मेरे अश्रुओं का झरना है। तब सखि! तुम कैसे कहती हो कि पुष्प मुझसे भिन्न हैं। जब तक पुष्प में आँसू हैं, तब तक वह बंद रहता है; जब उसमें हास्य भर जाता है, तभी वह खिल उठता है;

हँसी में आँसू छिपे हैं और आँसुओं में हँसी। उल्लास में विषाद छिपा है और विषाद में उल्लास। वैभव में वेदना और वेदना में भी वैभव छिपा है।

मैं और तुम

तुम दिन का आलोक हो, मैं रात्रि का अंधकार। तुम पथ को सुझाने वाले हो, मैं पथ को भूलने वाली। तुम जीवन को समझकर चलने वाले हो, मैं भूलकर चलनेवाली।

तुम जागरण हो, मैं स्वप्न। तुम कल्पना हो, मैं उसका धागा। तुम जीवन का सहारा हो, मैं बहता हुआ तिनका। तुम जीवन की सुलझन हो, मैं उसकी उलझन। तुम जीवन का सुनहरा पृष्ट हो, मैं उसमें लिखा करुण इतिहास।

तुम अनन्त नीलाकाश हो, मैं उसमें टिमटिमाता हुआ एक छोटा सा नक्षत्र। तुम विस्तृत जलधि हो, मैं उसमें बहनेवाली एक लहर। तुम कोमल सीपी हो, मैं तरल मोती। तुम विस्तृत बिछा पथ हो, मैं एक छोटी सी पगडंडी।

तुम लहलहाता वृक्ष हो, मैं सूखा पल्लव। तुम सरस मधुमास हो, मैं नीरस पतझर। तुम मृदुल हास्य हो, मैं दर्दभरा रुदन। तुम आनन्द की लहर हो, मैं विषाद की रेखा।

तुम उल्लास का साम्राज्य हो, मैं वेदना की समाधि। तुम चिर जागरण हो, मैं चिर निद्रा। तुम सुंदर वीणा हो, मैं उसमें झनझनाता जर्जर तार। तुम मधुर गान हो, मैं करुण लय। तुम विकसित पुष्प हो, मैं कुम्हलाई पंखुरी। तुम उड़ता हुआ परिमल हो, मैं झड़ा हुआ मकरंद। तुम दिवस की मुखरित चंचलता हो, मै निशीथिनी की मौन नीरवता। तुम्हारे ओठों से हँसी बिखर रही है, पर मेरी आँखों से अश्रु झर रहे हैं.....झर रहे हैं...झर रहे हैं।

क्यों ?

समीर के मृदुल झोंके क्यों शून्य में विलीन हो जाते हैं ? सब कुछ चुपचाप सहने के लिए। लहरें किनारों से टकराकर क्यों दूर दूर हो जाती हैं ? अपनी बात किसी से न कहने के लिए ! नक्षत्र आकाश से छिटककर क्यों बिखर जाते हैं ? आकुलता छिपाने के लिए। कमल से जल-विंदु क्यों टपकते हैं ? संसार की नश्वरता को दोहराने के लिए।

आँखों से आँसू क्यों छलक जाते हैं ? हृदय का बोझ कम करने के लिए। मन सुखों से विदा क्यों ले लेता है ? दुःख को अपनाने के लिए।

प्रभात फीकी हँसी क्यों हँस उठता है ? विषाद में उल्लास भरने के लिए। रात्रि नींद से करवट क्यों ले उठती है ? व्यथा को मनाने के लिए। रजनी सन्ध्या से विदा क्यों ले लेती है ? स्नेह संचित करने के लिए। रजनी उषा के लिए क्यों ललक उठती है ? विषाद को धोने के लिए। फिर उषा सन्ध्या की गोद में आने को क्यों छटपटा उठती है ? सुख की कुछ बूंदें पाने के लिए।

बादल क्यों घिर-घिर आते हैं ? स्मृति को जगाने के लिए। वसुधा क्यों आँचल पसार रही है ? स्नेह का उपहार पाने के लिए। विद्युत् क्यों तड़प उठती है ? अपनी वेदना को सहलाने के लिए।

निधि

आकाश की निधि तारे, तारों की निधि रातें और रातों की निधि नीरवता।

आँखों की निधि आँसू, आँसू की निधि पीड़ा, पीड़ा की निधि स्मृति और स्मृति की निधि विस्मृति।

जीवन की निधि भूलें, भूलों की निधि काँटे, काँटों की निधि आहें, और आहों की निधि जीवन की अंतिम साँसें।

समय

चपलता शैशव की, अल्हड़ता यौवन की, गम्भीरता प्रौढ़ावस्था की और उदासीनता वृद्धावस्था की ही अच्छी लगती है।

चन्द्रिका स्निग्ध चन्द्र की, मादकता मधुमास की और सूनापन पतझार का अच्छा लगता है।

उषा की बिखरी हुई अरुणिमा प्रभात में, धुंधलापन सन्ध्या में और नीरवता रात्रि में ही प्रिय लगती है।

हँसना तो तभी अच्छा लगता है जब हँसने को मन हो, रोना भी तभी आता है जब संघर्षों से कमर टूट जाती है और अपनी कहानी कहना भी तभी अच्छा लगता है जब किसी में कुछ सुनने की धीरता हो।

सम्बद्ध

समुद्र की प्रत्येक लहर एक दूसरे से गुँथी है। मुकुलित पंखुरियाँ एक दूसरे से सटी हुई हैं। हृदय की रागिनी जीवन की लय से बँधी हुई है।

सुख दुःख का एक दूसरे से लगाव है। रजनी को प्रभात से मिलाने वाली भी अंधकार और आलोक की संधि ही है। निराशा से जर्जर हृदय भी आशा के सहारे जीवित है।

मेरा मन तुम्हारे मन से बँधा है। मेरा हृदय तुम्हारे हृदय से जुड़ा है। मेरे आँसू तुम्हारे आँसुओं से भीगे हुए हैं और मेरे करुणतम गान तुम्हारे जीवन से मधुर हो उठे हैं। मेरे जीवन का साज ही तुम्हारे जीवन से बँधा है।

व्याप्त

साँस की गति में, उर के स्पन्दन में और मन के कूजन में तुम्हारा निवास है।

मेरी कल्पना में, हृदय की भवनाओं में, भावनाओं के संघर्ष में, और बुद्धि के तर्क-जाल में भी तुम्हीं बसे हुए हो।

मौन स्मृति में, अतल वेदना में और तप्त अश्रुओं में भी तुम्हीं लहरा रहे हो।

रात्रि के सपनों में, प्रभात के जागरण में और उषा की अरुणाई मे भी तुम्हीं छिपे हो।

आशा के आल्हाद में, निराशा के कोहरे मे, प्रतीक्षा की व्यग्रता में और खिन्नता के बादलों में भी तुम्हीं छाए हुए हो। एकान्त जीवन की सजलता में, नीरव-पथ की शून्यता में और हृदय की प्रत्येक धड़कन में भी तुम्हीं समाए हुए हो।

आदेश

यदि अंधेरे पथ में कोई दीपक जलाने वाला न हो, तो हे मन तुम स्वयं दीपक बनकर चुपचुप जलना। यदि नीरव-पथ की मौनता को कोई मुखरित करने वाला न हो, तो हे मन तुम स्वयं ही कूज उठना। यदि धूमिल पथ को कोई सुझाने वाला न हो तो भरी-भरी आँखों के काँपते अश्रुओं से पथ को स्वयं ही समझ कर चलना। यदि जीवन-पथ को कोई ध्वनित करने वाला न हो, तो हे मन सुकुमार करों से तुम उर वीणा के तारों को स्वयं ही झनझना देना, एक बार, केवल एक बार।

यदि उर्मियाँ उद्विग्न होकर शोर मचा रही हों, तो हे मन तुम स्नेह-दीप को अंचल बनकर बुझने न देना। यदि जीवन के सभी सहारे टूट चुके हों, तो हे मन तुम जीवन की सान्त्वना बन कर व्यथित हृदय को थपकी देकर सुला देना। जब जीवन का अंतिम गान पूरा होने ही वाला हो, तो हे मन तुम पीड़ा के आँसू बनकर स्मृति-पथ पर बिखर जाना। जीवन-सन्ध्या के कगार पर प्रतीक्षा करते-करते जब नेत्र पथरा जाएँ, तब हे मन तुम अपने सुकुमार करों से मेरी मृदुल पलकों को सदा के लिए बन्द कर जाना। जब व्यथा के भार को सहने की शक्ति शरीर में न रह जाय, तब हे मन टूटी कमर को सहारा देकर पथ को पार लगा जाना। अंतिम बेला में यदि कोई अभिलाषा अटकी रह जाए, तब हे मन तुम समाधि के खंडहर पर पराग बनकर बिछ जाना।

परदेशी

परदेसी ! एक दिन अपरिचित पथ पर सहसा ही तुमसे भेंट हो गई थी। उस दिन सन्ध्या थी। उस मलिन संध्या की सिमटी उज्ज्वलता को स्मृति से कभी न मिटाया जा सकेगा, क्योंकि वह क्षण प्रथम परिचय का क्षण ... था।

परदेसी ! एक दिन बीहड़ पथ पर जब अकेले कटीले पथ को पार कर रही थी, पीछे पीछे तुम आ रहे थे। पैर मे काँटा चुभ जाने के कारण जब पीड़ा से कराह उठी थी, तभी तुमने समीप आकर काँटा निकाल कर पीड़ा दूर की थी। वह क्षण जीवन में सदा चिरस्मरणीय रहेगा, क्योंकि वही आत्म-समर्पण का सुखद क्षण था।

परदेसी ! सुनसान पथ पर तुम मिले थे। तुम्हारी मृदुल पलकों में से झाँकते हुए अमित विश्वास को कभी न भुलाया जा सकेगा, क्योंकि उस घने विश्वास के सम्मुख जीवन की सभी असफलताएँ क्षण भर में बह गई थीं।

परदेसी ! मेरा अनजान पथ तुम्हारे दर्शन से सरस हो उठा था। जीवन के उस क्षण को कभी न भुलाया जा सकेगा, क्योंकि उसी दिन उस मौन संभाषण मे स्नेह-मुकुल लगा था।

छिपा रहस्य

सन्ध्या की छिपती उदासी और दीपक की बुझती अंतिम सशक्त लौ को क्या किसी ने पढ़ा आज तक?

वेदना के ढलते और सूर्यास्त की अंतिम डूबती आभा में निहित कोमल मीठे सौन्दर्य को क्या किसी ने जाना आज तक?

क्षितिज के अरुण पट की भीगी उदासी और यौवन की मुखरित प्रसन्नता में छिपी हलचल को क्या किसी ने पहचाना आज तक?

स्नेह की मधुर थपकियों से निद्रित हृदय की तड़पन और कराहते पवन की क्षीण आह को क्या किसी ने सुना आज तक?

मधुर स्वप्न में खिले, धूल में बिखरे कुचले सुमनों के उत्सर्ग और निराशाओं से उपलब्ध सहारे का क्या किसी ने हृदय से स्वागत किया आज तक?

तुम

प्राण ! जब तुम्हारी स्मृति में मेरी उर-वीणा के तार झंकृत हो उठते है, तब मेरी धड़कनों की ध्वनि तुम तक पहुँच पाती है या नहीं ?

प्राण ! तुम मेरे सुख सपनों का अटूट सहारा, प्राणो का सर्वस्व और जीवन पथ का पाथेय हो ।

तुम मेरे उर की धड़कन, अधरो का कम्पन और मन का क्रन्दन हो ।

प्रिय ! तुम्हीं तो वेदना की कसक, स्नेह का सौरभ हो और हो अँधेरे सजल-पथ की नीरवता में आशा की टिमटिमाती ज्योति ।

तुम हो यौवन का मधुमास, उन्मादों की विभावरी और आँसुओं का सहारा ।

तुम्हीं तो हो आशाओं का स्तम्भ, विश्वास की दृढ़ता और जीवन-खंडहर की सुनहरी ईंटें ।

जब तुम्हारी स्मृति से मेरी उर वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं, तब प्राण, मेरी धड़कनों की ध्वनि तुम तक पहुँच पाती है या नहीं ?

स्पष्ट बात

मैं चाहती हूँ तुम्हारी एक मूर्ति अंकित करना। जानते हो क्यो ? क्योंकि मैं तुम्हारी मधुर स्मृति को अपने हृदय के मधुर कोने में छिपा कर सुखी तो हूँ, पर अतृप्त भी।

मैं..... तुम्हें मन की आँख और प्रत्यक्ष पुतलियों दोनों से निरन्तर देखना चाहती हूँ।

इससे हँसी होगी। यही न ? पर जब मुझे ही भय नहीं, तब तुम क्यों डरते हो।

पश्चाताप

मैं संसार में भोलापन लेकर आई। पर मेरी यह निधि ही मेरे लिए अभिशाप बन गई। बहुत दिनों में आज मैं यह जान पाई हूँ कि इसे परखने वाला कोई नहीं।

संसार कहता है कल्पना की उड़ान ला, कला चातुर्य्य ला, वाणी में दर्द ला।

पर मैं क्या करूँ ? मैं संसार में केवल भोलापन लेकर आई।

आलोक और निराशा

जब तुम आए, तब भी कुटिया में अँधेरा था। जब तुम गए तब भी दीपक बुझा हुआ था। युगों बाद वह दीपक आज स्वयं प्रज्ज्वलित हो गया है।

जब दीपक बुझा हुआ था, तब तो तुम शायद भूल से आ भी गए थे, पर अब जब बुझा हुआ दीपक फिर से उद्दीप्त हो उठा है, तब तो तुम्हारे आगमन की आभा भी स्वप्न बन कर रह गयी है।

पथ और आह्वान

मेरे आगे बढ़ने की गति को कौन रोक रहा है ? दूर से यह किसका आह्वान आ रहा है ?

क्या मैं पथ के बीच में रुक जाऊँ ?

मेरी व्रीड़ा के हठीले बंधन मेरे चरणों की गति अवरुद्ध कर रहे हैं। जीवन की प्रेरणा पीछे से पुकार रही है।

तब क्या मुझे उस आह्वान को स्वीकार कर लेना चाहिए ?

अप्राप्य की प्राप्ति

तुम मेरे मन और प्राणों के क्षितिज पर ऐसे छा गए हो कि क्षण भर को भी तुम्हारा ध्यान नहीं हटता। कभी-कभी सोचती हूँ जब तुम अप्राप्य हो तो तुम्हारे चिन्तन के भार को ढोने से क्या लाभ ? पर मन हठी जो है।

ऐश्वर्य के सौध-शिखरों को भी तुम पर न्यौछावर किया जा सकता है; पर संसार का समस्त वैभव भी तुम्हारा मूल्य नहीं चुका सकता।

हे मन ! ऐसे अनमोल रत्न से तूने प्रीति क्यों बाँधी है ?

बाहर-भीतर

मैं कुछ नहीं हूँ; पर तुम्हारे साथ भाव-सूत्र में बँध जाने से मैं भी मधुर हो उठी हूँ।

तुम्हारे व्यक्तित्व में मेरा अस्तित्व घुलमिल कर इस प्रकार एकात्म का अनुभव करने लगा है कि तुम्हारे हृदय के स्पंदन भी मुझे अपने ही लगते हैं।

जब हम दोनों एक हैं तो फिर यह अलगाव या दूरी क्यों है प्रियतम ?

व्यवधान का पूरक

धरणी और आकाश के बीच की दूरी को जड़ चेतन प्रकृति के समस्य व्यापार पूर्ण करते हैं।

समुद्र के दोनों किनारों के बीच के विस्तार को समुद्र का जल पाट देता है।

हमारे तुम्हारे हृदय के बीच के अन्तराल को सद्भावना के स्पर्श भर देते हैं।

कुछ है जो मेरे और तुम्हारे दो व्यक्तियों के व्यवधान का पूरक है।

क्या है वह, प्रियतम !

अभिलाषा

प्रियतम ! मैं चाहती हूँ कि तुममें आसक्त होकर भी मैं तुमसे अनासक्त रह सकूं।

तुम्हारी मधुर कल्पना में रात दिन लीन रहने पर भी तुम्हारे प्रति तटस्थ रह सकूं।

मँझधार में पड़ी रह कर किनारे की निकटता न पा सकने पर भी, जीवन में किनारा पा सकने का विश्वास पा सकूं।

तुम्हारी मूर्त कल्पना की गोधूलि-वेला की झिलमिलाहट में से भी जीवन की जीवित प्रेरणा प्राप्त कर सकूं।

इतना ही चाहती हूँ मेरे आराध्य।

हृदय की मंजूषा

यह हृदय तुम्हारी स्निग्ध मधुर स्मृति से परिपूर्ण होने पर भी ख़ाली ही है।

सब कुछ तुम्हें समर्पित करने पर भी यही लगता है कि तुम्हें अभी बहुत कुछ देना शेष है।

तुम्हें बहुत कुछ जानने पर भी लगता है तुम्हें अभी तक जाना ही नहीं। जब मैं यह सोचती हूँ कि तुम्हें पूर्ण रूप से पहचान पाई या नहीं, तो पता नहीं कौन उस उत्तर के सम्मुख प्रश्न-चिन्ह लगा जाता है।

जीवन की सम्पूर्ण भाव-मंजूषा सौंप देने पर भी यही लगता है कि मेरा हृदय फिर उन्हीं भाव-कृतियों से भरा-पूरा है।

फूल

प्रियतम, मैं तुम्हारे द्वार पर अधखिला फूल लेकर आई। तुम्हारे पास वह खिल उठता। पर तुमने उधर देखा नहीं। मैं चाहती हूँ, पुष्प की मुस्कान तुम स्वीकार करो। मुझे डर है उसका पराग और मकरंद कहीं झड़ न जाये।

प्रकृति और प्राणी

संध्या की दलती अरुणाभा विश्व के प्रांगण में अपना स्वर्ण बिखेर अंधकार की क्रोड़ में आश्रय पाने को अधीर हो उठती है।

नीलाकाश की श्याम सजल मेघमाला बरसने के लिए झुकी-झुकी पड़ती है।

सुमन का पराग खिली प्यासी पंखुरियों में से निकल कर किसी का अंचल सुरभित करने को चंचल-चंचल है।

इसी प्रकार मेरे हृदय का समस्त अनुराग तुम्हारे चरणों में अर्पित होने को छलका पड़ता है।

आत्म-निवेदन का पल

जब तुम न थे तो असंख्य बातें मेरे मन में घुमड़ रही थीं।

तुम मिले...

और मैंने तुमसे सब कुछ कहना चाहा, गिन गिनकर एक-एक बात कहनी चाही—एक एक बात!

पर क्या मैं कुछ कह पायी?

मैं कुछ कहने ही वाली थी कि तुम विस्मय से ठिठककर खड़े हो गए और मुझे ध्यान से देखने लगे।

मारे लज्जा के मन की बात मन में ही रह गई।

तुमने ऐसा क्यों किया?

उर-वीणा

जीवन भर की संचित भाव-राशि को आज तेरे चरणों पर न्योछावर करने आई हूँ।

इन गीतों को मैंने वेदना के स्वरों से रचा है।

इन गीतों को गाकर मेरे उर की कंपित वीणा क्या सदा को मौन हो जायगी?

कौन जाने!

निर्लिप्त नाविक

तुम मेरे जीवन-सागर की उद्विग्न लहरों से खेल रहे हो।

सच बताओ, क्या तुम उन लहरों के झकोरों से स्वयं नहीं भीगते?

अथाह समुद्र की थाह पाना तो दूर रहा....मुझे दूर-दूर तक किनारा भी तो दिखाई नहीं दे रहा; पर तुम हो कि तटस्थ भाव से मेरी नैया के अदृश्य कर्णधार बनकर मेरे चारों ओर छाये रहते हो।

इससे मैं क्या समझूँ!

वंचित का सुख

तुम मुझे चिर वंचित समझते हुए अपने मानसिक मिलन के रस से इतना कृतज्ञ करते हो कि मेरे लिए वह पल स्पर्श के पार्थिव सुख से कहीं अधिक आनंद देता है।

तुम्हारी दूरी के सम्पर्क की विद्युत् धाराएँ मेरे अस्तित्व को कँपाकर मुझे अनिर्वचनीय सुख के सागर में डुबा जाती हैं।

मैं अभिभूत हूँ तुम्हारे मौन से जो अपनी सहानुभूति से मेरे व्यक्तित्व को इतना रसमय कर जाता है कि मैं अपने को वंचित समझने की भूल करूँ भी तो कैसे?

जीवन और संसार

इस ओर चलने के लिए जीवन का अनंत पथ है...उस ओर पार करने के लिए संसार का अथाह सागर...

पग आगे बढ़ते हैं और घायल हो जाते हैं। पथ की दूरी बढ़ती जाती है और छोर दिखाई नहीं देता।

और सागर को पार करने के लिए न तो कोई जलयान है और न दूर-दूर तक दिशा-ज्ञान कराने के लिए कोई आलोक-स्तंभ।

तब मैं क्या करूँ ?

पथ और गति

कितना जीवन बीत गया...वेदना के आकंठ जलधि में बहते-बहते।

पर, न तो वह डूबा ही और न उसकी श्वास-शृङ्खला ही टूटी।

पर मन, आज भी तुझमें इतनी कसक शेष क्यों है?

आज तू इस भावना मात्र से कंपित क्यों हो उठता है कि संसार न तो तेरे लंबे मौन उत्सर्ग को समझ पाया, न हृदय की सच्ची अनुभूतियों को, न प्राणों के चारों ओर रात-दिन डोलती विवशता की घनी काली छाया को ही।

कितना जीवन बीत गया इसी प्रकार अर्थहीन बहते-बहते।

मैं जानती हूँ

हृदय के असीम सागर में क्या लहरों की अटखेलियों की उथल-पुथल कम थी, जो तुम शरद पूर्णिमा के चाँद बनकर उन्हें उद्वेलित करने आ गए।

अरे, यह सारी रजत शृङ्गार-सज्जा तुम्हारे उदार प्रकाश की ही तो झलक है, मेरे प्राण!

ऐसी दशा में तुम इस पर क्या मुग्ध होते!

लघु दीप

तेरे असंख्य दीपकों की ज्योति में एक मंद टिमटिमाता हुआ दीप मेरा भी है। मेरा वह दीप सब दीपकों से लघु है और मंद-मंद जल रहा है जिससे वह सबसे अलग पहचाना जा सके।